bdkbZ 7 nfyr dgkuh dh fof'k"Vrk] dFkkoLrq] lkekftd&lkaLÑfrd ljksdkj

bdkbZ dh :ijs[kk

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 दलित लोक कथा की विरासत एवं दलित कहानी

7.3 दलित कहानी की कथावस्तु

7.4 दलित कहानी की विशिष्टता

7.5 दलित कहानी के सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार

7.6 सारांश

7-0 mís';

'हिन्दी दलित साहित्य की परंपरा और विकास' के खंड–2 की यह पहली इकाई है। इस इकाई में आप दलित कहानी की कथावस्तु, विशिष्टता और उसके सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकारों का अध्ययन करेंगे। दलित कहानी का यथार्थ, उसकी भावभूमि बिल्कुल अलग है। हिन्दी की परंपरागत साहित्यिक परंपरा के समान्तर इसका विकास हुआ है, दलित कहानियों का कलेवर और बिम्ब बिल्कुल अलग है। इसकी भाषा एवं संवेदना नए सौंदर्य बोध का सृजन करती है। समतापरक समाज की संरचना दलित कहानियों का मुख्य ध्येय है जो आंबेडकरवादी विचारधारा पर आधारित है। आइए, इन्हीं संकल्पनाओं के साथ इस इकाई का तर्कपूर्ण अध्ययन–मनन करें। इसके अंतर्गत आप निम्नलिखित बिन्दुओं को व्यापकता में समझ सकेंगेः–

- हिंदी कहानी के विकास में दलित लोक कथाओं की भूमिका से परिचित हो सकेंगे;
- दलित कहानी के उदय और उसकी परंपरा को जान सकेंगे;
- हिंदी की दलित कहानी परंपरागत साहित्य परंपरा से कैसे अलग है – इसका सम्यक विश्लेषण कर सकेंगे;
- दलित कहानी की कथावस्तु और अभिव्यक्ति की भिन्नता की पड़ताल कर सकेंगे;
- दलित कहानी में इतिहास के सच को खोज सकेंगे;
- इसके अंतर्गत संस्कृति एवं वर्चस्व के संबंधों को समझ सकेंगे;
- दलित लेखन के वैशिष्ट्य को सम्पूर्णता में परख सकेंगे;
- यातना और आक्रोश के सर्जनात्मक रूपांतरण से आप भली–भांति परिचित हो सकेंगे;
- दलित कहानियों में अन्तर्निहित वैचारिकता की वजहों से अवगत हो सकेंगे; और

- दलित कहानियों में अभिव्यक्त आकांक्षा एवं भविष्योन्मुखी सपनों को सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकारों में तब्दील होते हुए देख सकेंगे।

अब यह इकाई आपके समक्ष प्रस्तुत है। आइए, इसका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन–विवेचन करें।

7-1 iLrkouk

दलित कहानी की कथावस्तु, विशिष्टता और सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार को साहित्य के परंपरागत ढांचे पर निर्मित मानदंडों के आधार पर समझना या परखना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। दलित साहित्य की वैचारिकी तथा पृष्ठभूमि को समझना अपरिहार्य है। खड़ी बोली हिंदी में लिखित कहानी का इतिहास दलित कहानी के परिप्रेक्ष्य में सरोकारों को स्पष्ट नहीं कर सकता। इस सच को ईमानदारी से स्वीकार करना चाहिए कि हिंदी साहित्य सत्ता में सभी वर्ग, जाति और धर्म के लोगों की बराबर की भागीदारी नहीं रही है। विषमता पर आधारित व्यवस्था ने यह अवसर ही नहीं दिया था कि सभी को एक साथ, एक जैसी शिक्षा मुहैया हो सके। यहाँ का बहुसंख्यक वर्ग विशेषकर दलित और स्त्रियों को धर्म के आदेश के अनुपालन में शिक्षा से लंबे समय तक वंचित रखा गया है। वर्चस्व के ऐतिहासिक और यातनादायी सच से गुजरे बिना क्या हम विषय की तह तक पहुंच सकते हैं? हिंदी साहित्य के इतिहास में दलितों–वंचितों के लिए कितनी जगह है? क्या साहित्य और सत्ता के संबंध पर बात नहीं होनी चाहिए? इन सवालों से गुजरे बगैर हिंदी की दलित कहानी के सरोकारों को नहीं समझा जा सकता।

बौद्धकालीन भारत और संत युगीन भारत के इतिहास को पुनर्विश्लेषित करना चाहिए जिसमें हिंदी साहित्य की शाश्वतता और स्वायत्तता के समक्ष चुनौती पेश की थी। हिंदी के नवजागरण कालीन साहित्य में दलित प्रश्न और दलितों की अनुपस्थिति ने हिंदी साहित्य की परंपरा और विरासत पर ही सवालिया निशान खड़ा किया है। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में लिखी गई इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' भाषा और धर्म की आड़ में हिंदी कहानी के इतिहास को हाशिए पर डाल दी गई है। हिंदी–उर्दू के विवाद ने गद्य के इतिहास को काफी प्रभावित किया है।

हिंदी साहित्य के वैचारिक इतिहासकार माने जाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 1900 ई. से हिंदी कहानी को चिन्हित, रेखांकित और स्थापित किया है। आपके दिमाग में सहज ही एक सवाल, गूंजना चाहिए कि आधुनिक हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग के प्रवर्त्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादकत्व में 'सरस्वती' पत्रिका में सन् 1914 में पटना के हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित हुई थी। यह अलग प्रश्न है कि हीरा डोम का कोई परिचय नहीं, कोई अतीत या इतिहास नहीं है। उसी दौर में हिंदी पट्टी में स्वामी अछूतानंद ने सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन छेड़ा था। हिंदी साहित्य का 'नवजागरण कालीन' दौर भी वही था जब राष्ट्रीय फलक पर डॉ. आंबेडकर सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर सक्रिय थे। परंतु हिंदी कहानी के उद्‌भव और विकास के इतिहास में दलित कहानी का कोई इतिहास नहीं मिलता। दलित जीवन से जुड़ी प्रेमचंद द्वारा लिखित कहानियाँ सन् 1929–30 के आसपास जरूर मिलती है लेकिन दलित द्वारा लिखित किसी भी कहानी का जिक्र नहीं मिलता, जबकि लोक में दलित की उपस्थिति से आप इंकार नहीं कर सकते। इस पर विस्तृत एवं गम्भीर शोध तथा विश्लेषण की जरूरत है।

बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के परिनिर्वाण के बाद आधुनिक काल की साहित्यिक–सांस्कृतिक गतिविधियों में खासकर महाराष्ट्र के दलित संदर्भों में बुनियादी बदलाव देखा जा सकता है। 70 के दशक तक वहाँ दलित लेखन आंदोलन का रूप धारण कर लेता है लेकिन हिंदी क्षेत्र का साहित्य प्रगतिशील आंदोलन और परंपरागत लेखन में दलित लेखन के लिए जगह नहीं बना पाया और वर्ण–व्यवस्था के बुनियादी सवालों पर चुप्पी साधे रहा। भारतीय समाज संरचना को वर्ग आधारित विभाजन की मार्क्सवादी व्याख्या में समाविष्ट करके की गई। गलती का अहसास अभी तक भी प्रगतिशील साहित्यिक सांस्कृतिक जगत में जगा नहीं । कई वर्ग या साम्यवाद में ही हिंदी साहित्य को उलझाता रहा। आंबेडकरवादी विचारों के राष्ट्रीय प्रचार–प्रसार के बावजूद प्रगतिशील लेखन ने सामाजिक समस्या को साहित्य सर्जना के उद्देश्यों में शामिल नहीं किया। आजादी के बाद संवैधानिक व्यवस्था से दलित समाज को शिक्षा और रोज़गार के अवसर मिले। आंबेडकरवादी विचारधारा ने दलित साहित्य लेखन को एक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य दिया है। देश की लगभग सभी भाषाओं में दलित लेखन हो रहा है। संपूर्ण लेखन की मूल अवधारणा एक ही है असमता, अन्याय और शोषण का खात्मा करना तथा अहिंसा समता मूल्यों पर आधारित समाज की स्थापना करना। स्वतंत्रता और भाई चारे के लिए माहौल बनाना। दलित कहानी लेखन की कथावस्तु का मूल आधार यही है और यही सरोकार दलित कहानियों का केन्द्र बिन्दु है।

हिंदी में आंबेडकरवादी विचारों एवं चेतना पर आधारित दलित कहानी लेखन का समय मोटेतौर पर सन् 80 के दशक के उत्तरार्द्ध को माना जा सकता है। इस इकाई के पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप जान चुके होंगे कि दलित लेखन में चेतना, अधिकार और आत्मसम्मान का क्या आशय है और इस लेखन या साहित्य द्वारा समतामूलक समाज की ओर बढ़ना क्यों लाज़िमी है। चेतना की जो धारा मराठी दलित साहित्य से शुरू हुई थी उसका विस्तार और विरासत संपूर्ण भारत में अपने समसामयिक आंदोलनों एवं संघर्षों के साथ एकाएक करते हुए दलित साहित्य एवं विमर्श में परिणत होती है। हिंदी की दलित कहानियों ने पिछले दो दशक से दलित चिंतन को अपनी विशिष्टता से काफी संवर्द्धित किया है। हिंदी के दलित कहानीकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदार, प्रेम कपाड़िया, बी. एल. नायर, सूरजपाल चौहान, कावेरी, कुसुम मेघवाल, जयप्रकाश कर्दम, विपिन बिहारी, नीरा परमार इस दौर के महत्वपूर्ण कहानीकार है, उनकी कहानियों में अभिव्यक्त दलित जीवन की त्रासद सच्चाई से आप इस इकाई के अध्ययन से रूबरू होंगे।

7-2 nfyr yksd dFkk dh fojklr ,oa nfyr dgkuh

जैसा कि आप जानते है कि भारत में लोककथा की परंपरा बहुत ही समृद्ध रही है। मौखिक और वाचिक परंपरा में इस अमूल्य धरोहर को बचा कर रखा है। लोक कथाओं के संबंध में उद्भव की अवधि नहीं निर्धारित की जा सकती। इसका संबंध मनुष्य के जन्म की कहानी से जुड़ा है। भारत ही नहीं दुनिया के हर भाषा–भाषी समाज में ऐसी परंपराएं रही होगी। आप स्वयं भी अपने घरों में अपने परिवार के बड़े बुजुर्गों की जुबानी तमाम कथाएं सुनते रहे होंगे। लोक कथाओं की यह परंपरा अभी तक जीवित है। परंतु यहाँ महत्वपूर्ण यह है कि लोककथा के माध्यम से दलित कहानी की विकास यात्रा को उसकी विशिष्टता और सरोकरों को कैसे समझा जाए?

दरअसल लोक में प्रतिरोध की संस्कृति के माध्यम से इन सवालों को ढूंढा जा सकता है। बौद्धकालीन भारत में जातक कथाओं की एक विकसित परंपरा है। यथार्थ और कल्पना से भविष्य की निर्मिति का साहित्य हमारे यहाँ पुरातन युग से चला आ रहा है। तिलिस्मी, जादुई तथा भूत–प्रेत की कथाओं की परंपरा ने लोकशक्तियों को नई परिभाषा दी। ऐसी कथाएं मनोरंजन के साथ–साथ वर्चस्व के बरक्स अपनी काल्पनिक शक्ति के द्वारा लोक में मौजूद दलित प्रश्नों व समस्याओं को रेखांकित करती हैं। थेरिगाथाएं बुद्धकाल में महिलाओं द्वारा रचित सबसे पुराना साहित्य है। इनमें नारी के मन में निहित प्रतिरोध के विभिन्न प्रकारों की बानगी देखी जा सकती है।

हमारी सामाजिक संरचना विभिन्न स्तर पर विभाजित है। भारतीय समाज रचना चूंकि जातियों, समुदायों, धर्मों में विभक्त है, इसीलिए वर्चस्व एवं प्रतिरोध के विभिन्न स्तर और समीकरण देखने को मिलते हैं। कहने का आशय यह है कि लोक विभिन्न स्तरों पर विभाजित है। हिंदी साहित्य इतिहास लेखन की परंपरा में लोक को 'लोकधर्म' के आलोक में व्यवस्थित करने की कोशिश की जाती रही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. नामवर सिंह ने 'लोकधर्म' को अपने–अपने ढंग से व्याख्यायित किया है। यहाँ 'लोकधर्म' को एक विचारधारण के रूप में (साधारण जनों के विद्रोह की विचारधारा – नामवर सिंह) इसकी परंपरा को खोज रखा है। 'लोक धर्म' किसी के यहाँ मर्यादा पालन का धर्म माना गया तो किसी के यहाँ लोक 'विद्रोह' का। कथित वरिष्ठों के लिए परंपरा, रीतिरिवाज कर्मठता, आडंबर और अस्पृश्यता का व्यवहार लोकधर्म है क्योंकि इसी के चलते वे अपना श्रेष्ठत्व बरकरार रखते आए हैं। लेकिन लोकाचार को सहते हुए बहिष्कृतों का जीवन नरकतुल्य करने वाली परंपरा रूढ़ियों, धर्म और आडंबर के विरोध में संघर्षरत सामान्य जन (अछूत, वंचित) विद्रोह का रास्ता अपनाकर एक प्रतिरोधी संस्कृति का निर्माण करते रहे हैं।

शिक्षा, शास्त्र और समाज से बहिष्कृत, वंचित समाज एवं जनसमूह की मानसिक अभिव्यक्ति का माध्यम लोकथाएं ही रही होंगी जो प्रभुत्व के विरुद्ध चुनौती देती रही होंगी। मुहावरे, लोकोक्तियाँ, लोककथाएं, लोकस्मृतियाँ लोकशक्ति की प्रवृत्तियों को पुष्ट करती हैं। वर्ण–व्यवस्था तथा शोषण के विभिन्न औज़ारों और जड़ मानसिकताओं के विरुद्ध लोक में प्रतिरोध की परंपरा का प्रामाणिक इतिहास अभी लिखा जाना बाकी है। समसामयिक दलित आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि बुद्ध, कबीर, फुले और बाबासाहेब से तैयार होती है। इतने लंबे पड़ावों के बीच दलित जनमानस द्वारा लोक में वर्चस्व के विरुद्ध चेतना का भाव अवश्य रहा होगा। समकालीन कहानी से पहले की कहानी का ढांचा अलग जरूर था लेकिन वही दलित जनमानस की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम था।

दलित वर्ग में शिक्षा ज्ञान से आई चेतना ने कहानी लेखन का तेवर बदला है और इस तेवर को ऊँचाई दी है आंबेडकरवादी विचारधारा ने जादुई, तिलिस्मी, भूत–प्रेत अंधविश्वासों और कर्मकांडों से मुक्त किया है, समतावादी विचारधारा ने। दलितों की छवि को विद्रूप बनाने वाली कहावतों, लोकोक्तियों को झूठा साबित किया है, दलित विमर्श ने। इस संदर्भ में आधुनिक हिंदी दलित का तेवर और सरोकार बिल्कुल स्पष्ट है। दलित कहानियों में सवर्ण पुरुषों द्वारा घर के भीतर अपनी ही स्त्रियों के शोषण की दासता और मुक्ति के स्वर खोजे जा सकते हैं। असमानता ओर अन्याय का पुरजोर विरोध और उसका खात्मा दलित कहानियों की विषय–वस्तु है। लोककथा में रचे गए मिथकों को रूपांतरित–कायांतरित कर चेतना के ओज से भरी हुई दलित कहानियाँ तर्क शक्ति समाज निर्मित करने की ओर उन्मुख हैं।

7-3 nfyr dgkuh dh dFkkoLrq

कहानी की संवेदना और उसकी निर्मिति की पृष्ठभूमि कथावस्तु का मूल आधार है। कहानी की बनावट, बल्कि समग्र ढाँचा कथावस्तु की नींव है। सामान्य हिंदी कहानी से भिन्न दलित कहानियों के रचनात्मक वैशिष्ट्य को समझे बगैर आप दलित कहानी की कथावस्तु को ठीक से नहीं परख सकेंगे। इसलिए जरूरी और प्रासंगिक यह है कि एक ही भाषा के भीतर के अंतर और अंतर्विरोधों को भी समझा जाए। इसके लिए विवेकसम्मत, तर्कपूर्ण एवं प्रमाणिक इतिहास बोध आवश्यक है। वर्चस्व की संस्कृति का इतिहास, उसका विकास और उसके प्रभावों की पड़ताल किए बगैर आप दलित कहानियों के विन्यास को नहीं समझ सकते। हिंदू–व्यवस्था के ढांचे की महीन बुनावट और उसके दुष्प्रभावों को दलित चेतना ने चिन्हित किया है। शोषण के जितने भी स्वरूप हो सकते हैं दलित लेखन ने उसे बेनकाब किया है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के मिथकीय कथा से लेकर आज तक के सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक–राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का पुनर्विवेचन और विश्लेषण ने दलित कहानी की कथावस्तु को नवीन स्वरूप दिया है। दलित कहानियाँ मात्र दलित जीवन की कहानियाँ नहीं है अपितु सम्पूर्ण भारतीय समाज की विद्रूपताओं, विडंबनाओं की कहानियाँ हैं। दलित कहानियाँ दलितों के दर्द का दस्तावेज़ हैं। जिसमें धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति, परंपरा आदि का सूक्ष्म विवेचन एवं सच्ची आलोचना है।

भारत की वर्ण जाति आधारित व्यवस्था में यातना का लंबा इतिहास है। अलग–अलग कालखंडों में इस व्यवस्था के खिलाफ विरोध और प्रतिरोध होता रहा है। सबसे प्रखर और सुव्यवस्थित संघर्ष फुले और आंबेडकर युगीन काल खंड में देखा जा सकता है। पिछली इकाइयों से आप संघर्ष और आंदोलन के इतिहास को बखूबी समझ चुके हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दलित मुक्ति आंदोलन का स्वर अंग्रेजी औपनिवेशिकता के समय में ही प्रखरता से राष्ट्रीय स्वर बन चुका था। आत्मसम्मान और अधिकारों की प्राप्ति के लिए किए गए संघर्षों के इतिहास को दलित कहानीकार पुनः साकार करता है। क्योंकि आजादी के लंबे अंतराल के बाद भी यातना और उत्पीड़न का सिलसिला थमा नहीं है। आर्थिक उन्नति होने के बावजूद जातिगत भेदभाव बड़े ही भयावह रूप में मौजूद है। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में मौजूद वर्चस्व की नृशंसताएं यथावत् जड़ जमाए हैं। छुआछूत, ऊँच–नीच जैसी विषमताएं आज भी मानवता का मजाक उड़ा रही हैं। असमानता को बनाए रखने वालों की मानसिकता और सत्ता तंत्र के गठजोड़ की राजनीति की भी दलित कहानीकारों ने पड़ताल की है। हिंसा और घृणा आधारित हिंदू व्यवस्था की जगह समता एवं करुणा की आकांक्षा दलित वैचारिकी का आधार स्तंभ है जो बुद्ध से डॉ. आंबेडकर तक के लंबे इतिहास की देन है। आंबेडकरवादी विचारधारा की मौजूदगी दलित कहानी की मूल संवेदना है जिसकी निर्मिति दलित चेतना से हुई है। अस्मिता बोध दलित कहानियों का मूल कथ्य है।

आत्मा–परमात्मा, स्वर्ग–नरक का नकार, पुरोहितवाद का विरोध कर्मकांड, अंधविश्वास, भाग्य–भगवान तथा पुनर्जन्म आदि ब्राह्मणवादी मूल्यों का नकार दलित कहानियों की कथावस्तु को गैर दलित कहानियों से अलग करता है। ब्राह्मणवादी इतिहास और संस्कृति को आंबेडकरवादी चेतना से पुनर्निर्वाचित करने के लिए दलित कहानियाँ बाध्य करती हैं। सभ्यता, संस्कृति और परंपरा की समीक्षा दलित चेतना का अहम् हिस्सा है। वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ एवं अन्य धर्मशास्त्रों एवं पौराणिक गाथाओं में व्यक्त दलित विरोधी छवियों के तिलिस्म को दलित कहानियाँ बेनकाब करती हैं। दमन और वर्चस्व की परंपरा का नकार दलित कहानी की कथावस्तु की महत्वपूर्ण विशेषता है। भारत की

सभ्यता एवं संस्कृति पर गर्व करने वालो को हिंदू–व्यवस्था की बर्बरता–अमानवीयता से साक्षात्कार कराने में सम्पूर्ण दलित साहित्य की अहम भूमिका है। ऐसे में दलित कहानियाँ विषमता मूलक समाज को समता मूलक समाज में तब्दील करने के लिए उत्प्रेरित करती हैं। दलित और गैर-दलित जीवन में मौजूद पितृसत्तात्मकता को प्रश्नांकित करना दलित कहानी के कथ्य एवं संवेदना का अति महत्वपूर्ण पहलू है। दलित स्त्री लेखन में दलित समाज के अंतर्विरोधों के लिए भी पर्याप्त जगह है। दलित कहानियों में जातियों–उपजातियों की मनोवृत्तियों, टकराहटों के संवेदनात्मक पहलुओं को भी विषयवस्तु बनाया गया है। जिसकी चर्चा प्रसंगवश इसी इकाई में आगे की जाएगी।

7-4 nfyr dgkuh dh fof'k"Vrk

भेदभाव और उत्पीड़न का स्वानुभव दलित कहानी के यथार्थ बोध की अभिव्यक्ति है। स्वानुभूति और सहानुभूति का प्रश्न इसीलिए दलित विमर्श के केंद्र में रहा है। कथावस्तु का चुनाव, घटना, चरित्र–चित्रण, देशकाल और सोद्देश्यता को दलित स्वानुभव प्रामाणिकता प्रदान करता है। दलित आत्मकथनों के माध्यम से स्वानुभव के व्यापक दायरे को समझा जा सकता है। अर्थात् दलित साहित्य का स्वानुभव सामुदायिक अनुभव है जो असमानता, भेदभाव और उत्पीड़ित समुदाय की संवेदना को सचेत और चेतनाशील बनाता है। इसीलिए दलित लेखन में विचारधारा का बहुत महत्व है। उपेक्षित होने की पीड़ा, अपमानित होने का दंश, उत्पीड़ित किए जाने की यातना और वंचना का क्रूर अनुभव दलित कहानी की विशिष्टता है। भेदभाव, अस्पृश्यता और जातिवादी ब्राह्मणवादी क्रूरताओं ने दलित जीवन को एक अभिशाप में बदल दिया है, अतः दलित कहानी को इनके जीवन में घिर आया यह अंधेरा ही दूर करना नहीं बल्कि ऐसा उजाला फैलाना होगा जो अन्य वंचितों के दर्द को भी दूर करने के लिए प्रतिबद्धता दर्शाएं। अभावग्रस्तता और शोषण की बारीकी को दलित कहानीकारों ने बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। शिक्षण संस्थानों, सरकारी दफ्तरों एवं ग्रामीण जीवन में दैनिक दिनचर्या में अपमान के दंश, वास्तविकता का रेखांकन दलित कहानी का वैशिष्ट्य है। मजदूरी और किसान जीवन की यथार्थता दलित कहानियों को बहुआयामी बनाता है। गैर–दलित स्त्री के प्रति औरतों के प्रति संवेदनशीलता दलित कहानी के सरोकारों को स्पष्ट करता है।

दलित जीवन संदर्भ और लेखन में बाल शोषण का चित्रण और उसकी विश्वसनीयता दलित आत्मकथनों से प्रभावित होती है। इसलिए दलित कहानी में यह वैशिष्ट्य अलग महत्व रखता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'रिहाई' में लाला का गोदाम वर्णव्यवस्था का कैद़खाना है, जहाँ जिन्दगियाँ रोंदी जाती हैं, अवमानित की जाती हैं और नकारे गए इंसान का जीवन जीने को बाध्य करती हैं। सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में दलित वंचितों का जीवन नरकतुल्य अवांछनीय कर दिया है। लेकिन 'रिहाई' कहानी का छुटकू गोदाम में आग लगाकर अंधेरे में नई रोशनी का संचार करता है। विषमता का बीज बोने वाली संस्कृति हाशिए की अस्मिताओं को निरन्तर दरकिनार करती रही है। प्रतिभा और मेरिट का सवाल खड़ा करने वाले लोग आज भी संकीर्णता से उबर नहीं पाए हैं। उस रूप ने उनके दिलोदिमाग में जहर घोल दिया है। शिक्षण संस्थाएं भी ऐसे संस्कार और सोच के लिए दोषी हैं। वहाँ भी विषमता के बीज मौजूद हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'घुसपैठिए' कहानी इसी रूप को उघाड़ती है। सुभाष lksudj dh ekSr 'kS{kf.kd laLFkkuksa dh xfjek dks >d>ksjrh gS& ¼*दलित छात्रों का मेडिकल में आना डी की दृष्टि से घुसपैठ भी ।*') यह कहानी उन दलितों को भी कटघरे में खड़ा करती है जो इन झूठ के माध्यम से ऊँचे ओहदों पर पहुँच गए

है, लेकिन उनका कोई सामाजिक सहयोग नहीं मिलता, कोई मार्गदर्शन नहीं मिलता। इस तरह की उदासीनता पर कहानी सवाल खड़े करके उन्हें इस बात का अहसास करती है कि शिक्षा के हर क्षेत्र, विषय, फैकल्टी पर दलितों का बराबर का अधिकार है, जो उन्हें आरक्षण के कारण मिला है।

मजदूर के अन्तर्विरोधों को भी दलित कहानी में विशिष्ट स्थान मिला है। 'मजदूर यूनियन' के कर्मचारियों में जड़ जमाए बैठे जातिवादी संस्कारों को ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'प्रमोशन' में उजागर किया गया जिसमें 'स्वीपर' से 'मजदूर' बन चुका सुरेश, कॉमरेड की उपाधि पाकर गदगद हो जाता है। कॉमरेड, पांडे के इस संबोधन से सुरेश के भीतर घंटियाँ बजने लगती हैं। वह बड़े उत्साह से घटना के बाद खोलने और अन्य सेवाओं में व्यस्त हो जाता है। उसे लगता है कि अब वह स्वीपर नहीं रहा। लेकिन जब केमिकल प्लांट के कर्मचारी कॉमरेड सुरेश के हाथों दूध लेने से मना कर देते हैं तो पुनः वह स्वीपर बन कर रह जाता है। सामाजिक–धार्मिक व्यवस्था की क्रूरता ने मनुष्य से मनुष्य के बीच इतना विभेद करके मानवीयता का मजाक उड़ाया है। एक ऐसी प्रथा जिसमें एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का मल–मूत्र सिर पर ढोने के लिए बाध्य किया जाए और उसे पेशेगत पहचान से जोड़ दिया जाए। श्रम के इस प्रकार किये गये अपमान को वर्गवाद में विश्वास करने वाली मार्क्सीस्ट विचारधारा भी बदल नहीं सकी। मूलतः भेदभाव की बुनियाद जाति व्यवस्था के चलते बरकरार है और यह तब तक संभव नहीं हो सकता जब–तक जाति व्यवस्था को मानने वाले लोगों की सोच में परिवर्तन नहीं आता। अमानवीय प्रथाओं के आज तक भी यथावत् बने रहने पर भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति का गुणगान करने से हम विचलित नहीं होते, एक क्षण रुककर सोचते नहीं कि इन बुराइयों के रहते हुए क्या हमारी संस्कृति को बेहतर संस्कृति बता सकते हैं? इस संदर्भ में दलित कहानियाँ सम्पूर्ण समाज को संवेदनशील बनाकर सोचने पर मजबूर करती हैं और समाज को जवाबदेह बनाती है। इस पेशे से जुड़े हुए लोगों को यदि व्यवसाय के दूसरे कार्यों में लगाया जाता है तो वहाँ भी जातिगत भेद–भाव और अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता है। सफाई कर्मी यदि दूध का व्यापार शुरू करते हैं तो उनसे कोई दूध नहीं लेता है। (हरियाणा प्रदेश से ऐसी रिपोर्ट आई है।)

अस्पृश्यता का अभिशाप शहर से अधिक गांव, कस्बों में रहने वाले दलित झेलते हैं, जिससे मुक्ति अभी भी संभव नहीं हुई है। वहाँ उत्पीड़न का अमानवीय स्वरूप अभी भी सामंतवाद, जातिवाद के रूप में जीवित है। पुलिस प्रशासन, राजनेता, मठाधीश, मुखिया, न्यायप्रणाली अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका के लोकतांत्रिक आधारों की नाकामियों और गठजोड़ को भी दलित कहानियाँ व्यंजित करती है। 'जंगल की रानी', 'यह अंत नहीं', 'सलाम' (ओमप्रकाश वाल्मीकि), 'अपना गांव', 'आवाजें' (मोहनदास नैमिशराय), 'परिवर्तन की बात', 'बदबू' (सूरजपाल चौहान), 'सीलिया संघर्ष' (सुशीला टाकभौरे), आदि कहानियाँ हमारी ग्रामीण और शहरी संस्कृति में व्याप्त जाति–व्यवस्था की जड़ता को बेनकाब करती है। दफ्तरों में सहकर्मियों और बॉस के रिश्तों में जातिभेद की कड़वाहटों को भी दलित कहानियाँ बेबाकी से प्रस्तुत करती हैं। दलित कहानियों की भाषा एवं शिल्प घटना एवं पात्रों के अनुकूल है। उसका अनगढ़पन ही उसकी विश्वसनीयता और प्रमाणिकता का आधार है जो लेखक के स्वानुभव से आया है। सामान्य मुहावरे दलित कहानी में विशिष्ट अर्थ पाते हैं जो पात्र एवं घटना की जीवतंता को कालजयी बनाते हैं। आत्मकथनात्मक शैली में लिखी गई कहानियाँ दलित लेखन की अनूठी विशेषता हैं।

7-5 nfyr dgkuh dk lkekftd&lkaLÑfrd ljkdkj

दलित कहानी रिरियाहट, याचना एवं निरीहता को पूरी तौर पर नकारती है। यहाँ वेदना का आक्रोश में रूपांतरण है। धर्म और संस्कृति की पवित्रता को चिन्हित कर नैतिकता और आदर्श के मानदंडों को दलित कहानी तोड़ती है। नए मानदंड और सौन्दर्यबोध का सृजन दलित कहानी का साहित्यिक सरोकार है। घृणा और हिंसा के स्थान पर समता, करुणा और भातृत्व का भाव दलित कहानी के सामाजिक सांस्कृतिक सरोकर है। यही दलित कहानी की वैचारिक प्रतिबद्धता भी है। वर्ण–जाति आधारित व्यवस्था का पूर्णतः खात्मा और ईश्वर का नकार दलित कहानी का मुख्य उद्देश्य है। व्यवस्था के क्रूरतम चेहरे को बेनकाब कर नियतिवाद से मुक्त करना दलित कहानी की जिम्मेदारी है। दलित कहानियों में आमूल परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा विद्यमान है। उन कहानियों में भविष्योन्मुखी स्वप्न, एक दृष्टि और एक विकल्प दिखाई देता है – समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का। बाबासाहेब का नारा – 'शिक्षित बनो! संघर्ष करो! संगठित हो' दलित कहानियों में साकार होता हुआ दिखाई देता है। दलित चेतना का विकास और परिवर्तनवादी स्वर दलित कहानी की मूल प्रवृत्ति है।

'यह अंत नहीं' ग्रामीण दलित स्त्री चेतना की प्रामाणिक कहानी है जो कुदृष्टि रखने वाले पर साहित्यिक ढंग से पुरजोर वार करती है और दुश्मन की बेहयाई को कायरता में तब्दील कर देती है। लेखन बड़ी तल्खी से पंचायती राजव्यवस्था की निरर्थकता और उसके दुरुपयोग को महसूस करता है। गाँव का बिसन दलित है, लेकिन वह अगड़ों और समंतों का मोहरा बनकर रह गया है। ऐसे में दलित स्त्री बिरमा को न्याय की दशा व्यर्थ दिखती है। परंतु बिरमा की मुखरता ने सभी में आशा का संचार कर दिया था, सभी ने मिलकर कहा था, ''ना बिरमा..... यह अंत नहीं है तुमने हमें ताकत दी है। हार को जीत में बदलेंगे, लोगों में विश्वास जगाकर, ताकि फिर कोई बिसन मोहरा ना बने।'' दलित कहानीकार ओमप्रकाश वाल्मीकि सामाजिक व्यवस्था के प्रति इतने चौकस हैं कि सिस्टम के हर धागे को उधेड़कर उसकी असलियत से परिचय कराते चलते हैं। डॉ. आंबेडकर ने गांवों को भारतीय गणतंत्र की अवधारणा का शत्रु माना था। उनके अनुसार हिंदुओं की ब्राह्मणवादी और पूँजीवादी व्यवस्था का जन्म भारतीय गांव में ही होता है। डॉ. आंबेडकर का कहना है कि ''भारतीय गांव हिंदू–व्यवस्था के कारखाने हैं। उनमें ब्राह्मणवाद, सामंतवाद, पूँजीवाद की साक्षात अवस्थाएं देखी जा सकती हैं, उनमें स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के लिए कोई स्थान नहीं है।''

दलित कहानियाँ जाति बोध के आभ्यंतरीकरण पर विमर्श का परिवेश रचती हैं। यह दलित का महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है जो दलित लेखकों की जबावदेही तय करता है और दलित कहानी के सामाजिक, सांस्कृतिक सरोकारों को मजबूती प्रदान करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की वैचारिक परिपक्वता का सबूत 'शवयात्रा' कहानी में मिलता है, जब बड़े साहस के साथ दलितों के भीतर के अन्तर्विरोध और आंबेडकरवादी संगठनों के ढोंग को लेखक बेनकाब करता है। दलित कहानी की वैचारिकी उसकी अमूल्य निधि है। दलित कहानीकारों की वैचारिक प्रतिबद्धता और दलित चेतना का प्रसार दलित साहित्य की धरोहर है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'मुम्बई कांड' में वैचारिक प्रतिबद्धता साकार होती है। कहानी का सजग और सचेतन रूप प्रतिशोध एवं प्रतिरोध की बारीकियों को स्पष्ट करता है। कहानी का पात्र सुमेर मुंबई कांड के प्रतिक्रिया स्वरूप जूते की माला लेकर उठ खड़ा होता है, लेकिन कदम बढ़ाते ही उसके मस्तिष्क में विचार कौंधता है, ''अरे! मैं यह क्या कर रहा हूँ। मुंबई में किसी ने मेरे विश्वास पर चोट की और मैं यहाँ किसी की आस्था पर चोट करने जा रहा हूँ। कुछ गांधी को 'बापू'

कहते हैं और आंबेडकर को 'बाबा', वहाँ 'बाबा' कहने वाले मारे गए, यहाँ बापू वाले मारे जा सकते हैं। *'बाबा' कहने वालों पर भी गाज गिर सकती है। जो भी हो मारे तो निर्दोष ही जाएंगे........... नहीं............ यह रास्ता न बुद्ध का है और न ही आंबेडकर का''।*

दलित कहानियाँ हिंदू व्यवस्था की जमीनी हकीकत की बानगी प्रस्तुत करती हैं। दलित कहानियों की भाषा और स्तरीयता पर प्रश्नचिन्ह लगाने वाले वर्ग को पुनर्विचार और आत्मालोचन करना चाहिए। दलित कहानी के सरोकारों को, उसकी ऐतिहासिकता और मानवीय पक्षों को जाने बगैर दलित कहानी के संवाद, भाषा–शैली और उद्देश्यों को नहीं समझा जा सकता। वह कहानी ही क्या जो अंतसर को हिला कर न रख दे। आत्मसम्मान, गरिमा और अधिकार के संघर्ष को साकार करती दलित कहानियाँ मनुष्यता का नया पाठ पढ़ाती है। जिसे वर्ण जाति आधारित व्यवस्था ने नीचे धकेल दिया था। दलित कहानी यथास्थितिवाद को तोड़ती है और आंबेडकरवादी विचारधारा के आधार पर चेतनाशील समाज की निर्मिति कर समतावादी अखंड भारत का विकल्प प्रस्तुत करती है।

7-6 lkjka'k

दलित कहानियों ने अपनी विशिष्टता और सरोकारों से सिद्ध किया है कि परंपरागत साहित्य लेखन से वे किस प्रकार भिन्न है – कथावस्तु और विशिष्टता दोनों ही स्तरों पर दलित कहानी का दायरा बहुत विस्तृत है जैसे – समाज के हर वर्ग की उपस्थिति, धर्म से जिरह, साम्प्रदायिकता और वर्ण–व्यवस्था का अंतःसंबंध, शिक्षण संस्थानों में दलितों के प्रति सोच, उनके प्रति व्यवहार, ब्राह्मणवादी मूल्य का नकार, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में दलित और गैर दलित स्त्री, शहरी और ग्रामीण जीवन का द्वन्द्व, जाति–उपजाति का द्वन्द्व, इतिहास एवं संस्कृति की पुनर्व्यवस्था, यातना की अभिव्यक्ति, कर्मकांड और ईश्वर का नकार आदि। इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता पर दलित लेखन सजग है। हजारों साल से पीढ़ी–दर–पीढ़ी यातना झेलते हुए एवं शोषणमूलक व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की प्रतिबद्धता दलित कहानी की कथावस्तु, विशिष्टता और सरोकारों में रूपांतरित करती है। वर्चस्व और विषमतापरक व्यवस्था को बराबरी और भाईचारे में तब्दील करने का सपना दिखाती दलित कहानियाँ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सरोकारों से सुस्पष्ट करती हैं। घृणा और हिंसा को करुणा एवं अहिंसा में रूपांतरित करने की आकांक्षा दलित कहानी का महत्वपूर्ण पहलू है। दलित साहित्य की वैचारिकी को समझे बगैर दलित कहानी की संवेदना को नहीं समझा जा सकता। फुले–आंबेडकर के लेखन, आंदोलन एवं संघर्ष की सच्चाई और अर्थवत्ता से जुड़े बगैर दलित कहानी के मर्म को समझना मुश्किल है। दलित कहानियाँ दलित आंदोलन के लंबे इतिहास की देन हैं। विषमताजनक व्यवस्था को बदलकर समतावादी समाज का सपना साकार करना हिंदी दलित कहानी का वैशिष्ट्य है।